गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों की आवश्यकताएं एवं चुनौतियां

डॉ. अयूब खान,

प्राध्यापक - समाज शाश्त्र

महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय उत्कृष्ट महाविद्यालय, ग्वालियर

ayub3565@gmail.com

गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों की आवश्यकताएं एवं चुनौतियां

अयूब खान

सामान्यत: कुछ विशिष्ट घटनाओं के संदर्भ में ही गुमशुदा व्यक्तियों के विषय को सार्वजनिक वार्तालाप में उठाया जाता है। कभी-कभी यह प्रश्न भी उठते हैं कि क्या सभी पंजीबद्ध गुमशुदा अंतत: ढूंढ़ लिए जाते हैं और उनकी तलाश में पुलिस की भूमिका कितनी प्रभावकारी रहती है ? गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों का उनके जाने के बाद क्या होता है तथा उनके सगे-संबंधियों का जीवन कैसा होता है ? सापेक्षिक रूप से गुमशुदा व्यक्तियों की वास्तविकता एक घटना के रूप में केवल कुछ हाई-प्रोफाइल प्रकरणों तक सीमित नहीं होती जो समय-समय पर अखबारों की सुर्खियां बनते हैं या प्रचार के अन्य माध्यमों में चर्चित होते हैं, बल्कि उन हजारों-हजार व्यक्तियों में होती है जो किसी भी कारण से प्रत्येक वर्ष गुम हो रहे हैं। इन लापता व्यक्तियों में से कुछ ऐसे भी होते हैं जो कभी नहीं मिलते अथवा दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं और कुछ ऐसे जिनकी गुमशुदगी पंजीबद्ध नहीं की जाती या जिनकी तलाश नहीं की जाती।

दुर्भाग्यवश आज भी भारत में गुमशुदा व्यक्तियों संबंधी प्रामाणिक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। हालांकि स्थानीय पुलिस इस संबंध में अपने स्तर पर आंकड़े अवश्य एकत्रित करती है किन्तु राष्ट्रीय स्तर पर इनका मिलान नहीं किया जाता।[1] पुलिस द्वारा एकत्र आंकड़े गुमशुदा व्यक्तियों की परिशुद्ध संख्या इसलिए भी प्रस्तुत नहीं करते क्योंकि पुलिस केवल उन घटनाओं को दर्ज करती है जो उन तक पहुंचती हैं।

I

दुनिया के विभिन्न देशों में गुमशुदा बच्चों तथा युवाओं पर कुछ अध्ययन अवश्य हुए हैं, जिनमें से अधिकांश घर से भागने वाले बच्चों पर केंद्रित हैं। भारत में गुमशुदा बच्चों तथा स्त्रियों के अध्ययनों की बाढ़ वर्ष 2006 में नोयडा, उत्तरप्रदेश के निठारी गांव में 30 लापता बच्चों के साथ हुए अत्यधिक घृणित कार्य तथा शोषण के सबसे खराब स्वरूप को प्रदर्शित करने वाली घटना के बाद आई। निठारी कांड के बाद राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली ने इस बहुस्तरीय तथा बहुआयामी जटिल समस्या के लिए एक अनुभवजन्य अध्ययन की आवश्यकता महसूस की तथा शंकर सेन और पी.एम. नायर के नेतृत्व में समाज विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली के सहयोग से एक विस्तृत अध्ययन किया। वर्ष 2004 से 2006 तक किए गए इस अतिमहत्वपूर्ण

अध्ययन की रिपोर्ट कानून की कमियों, कानून प्रवर्तन अभिकरणों के तालमेल के अभाव, संगठित गिरोह की संलिप्तता तथा तस्करी की शिकार महिलाओं एवं बच्चों की व्यथा को उजागर करती है।[2] वर्ष 2005 में चाइल्डलाइन इंडिया फाउंडेशन ने ' गुमशुदा बच्चों ' पर एक स्वतंत्र अध्ययन समन्वित किया। तीस शहरों में सातों दिन चौबीसों घंटे चलने वाली चाइल्डलाइन की नि:शुल्क दूरभाष सेवा पर प्राप्त फोनकॉल्स पर आधारित अध्ययन गुमशुदा बच्चों की जमीनी हकीकत दर्शाता है। उक्त अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि यद्यपि निठारी कांड के बाद तथ्य व गुमशुदा बच्चों की संख्या में बदलाव अवश्य आया है परन्तु ये समस्या जस की तस बनी हुई है।[3]

बचपन बचाओ आंदोलन[4] द्वारा सूचना के अधिकार आवेदनों के आधार पर वर्ष 2008 से 2010 के मध्य लापता बच्चों पर एक वृहद अध्ययन संपादित किया गया। गुमशुदा बच्चों की समस्या की प्रकृति व उसका विस्तार जानने तथा परिस्थितिजन्य विश्लेषण कर एक नीतिगत ढाँचा तैयार करने के उद्देश्य से किए गए उक्त अध्ययन से न केवल उन कारणों और तरीकों को पहचानने में सहायता मिली जिनसे गुमशुदा बच्चों की समस्या से निपटा जा सकता है बल्कि यह भी स्पष्ट हुआ कि गुमशुदा बच्चों के मामलों में कानून को व्याख्यायित तथा लागू करने के साथ-साथ घटना की जांच-पड़ताल की जिम्मेदारी एक पुलिस अधिकारी के ज्ञान तथा समस्या हल करने के तरीके पर और गुमशुदा बच्चे के माता-पिता की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करती है।[5]

गुमशुदा बच्चों एवं स्त्रियों पर किए गए अध्ययनों की तुलना में गुमशुदा वयस्कों पर शोध साहित्य की कमी है और जिन्होंने इस विषय पर अध्ययन किए हैं, उन्होंने भी गुमशुदा व्यक्तियों की विशेषताओं को जानने, गुम होने के सवाल को परिभाषित करने अथवा उनके प्रकारों को निर्मित करने का कार्य किया है। ये थोड़े से अध्ययन भी सैद्धांतिक रूप से पुलिस आंकड़ों के विश्लेषण पर आधारित हैं, चाहे वह अमेरिकन्स पर किया गया अध्ययन हो, जो गुमशुदा व्यक्तियों की विशेषताओं का एवं उनके लापता होने और वापस आने की परिस्थितियों का वर्णनात्मक विश्लेषण करता है[6] अथवा ऑस्ट्रेलिया में 270 गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों तथा मित्रों पर किया गया अध्ययन, जिसका उद्देश्य गुमशुदा प्रकरणों के कारण ऑस्ट्रेलियन समुदाय को होने वाली सामाजिक तथा आर्थिक लागत का मूल्यांकन करना था।[7] ये दोनों अध्ययन ' गुमशुदा' को परिभाषित करने में आने वाली अवधारणात्मक जटिलताओं को उठाते हैं तथा वयस्क गुमशुदा के मुद्दे पर अध्ययनों की कमी को रेखांकित करते हैं। आस्ट्रेलिया में किए गये अध्ययन में गुमशुदा व्यक्तियों की परिस्थितियों तथा

अभिप्रेरणाओं को जानने के लिए उनके परिवारों और/अथवा उन एजेंसियों से भी अतिरिक्त जानकारी एकत्रित की जो गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों के साथ कार्य करती हैं। इन अतिरिक्त तथ्यों से अध्ययन में यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि लोग जानबूझकर लापता हुए अथवा नहीं। क्या यह मुद्दा गुमशुदा व्यक्ति के विभिन्न स्वरूपों जैसे बागी हो जाने, प्रतिकूल परिणामों से बचने के लिए तथा अनचाहे में गुमशुदा को निर्मित करने के प्रयासों को मजबूत करता है।[8]

ऐसे परिवारों के अनुभवों पर तो बहुत ही कम या न के बराबर अध्ययन हुए हैं जिनके घर से कोई लापता है। पी.जी. बॉस[9] द्वारा गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों पर किए गए अध्ययनों से कुछ प्रासंगिक अवधारणाएं विकसित हुईं। उसने ऐसे परिवारों के संबंध में विस्तार से लिखा है जो ' अस्पष्ट क्षति ' भुगतते हैं; चाहे वह परिवार के किसी सदस्य के गुमुशदा होने की वजह से हो और उसकी नियति की जानकारी न हो या ऐसे व्यक्ति के कारण हो जो सशरीर तो उपस्थित हो किन्तु उसका व्यक्तित्व अल्.जाइमर या डिमेंशिया से पीड़ित होने के कारण खो गया हो। 'अस्पष्ट क्षति' की उक्त अवधारणा परिवार के सदस्यों को होने वाले तनाव, तनावों से मुकाबला करने की रणनीतियां तथा उनके मनोसामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करने का ढाँचा उपलब्ध अवश्य कराती है।[10]

कई बार गुमशुदा व्यक्तियों के परिवार पीछे छूटे सबूतों के अभाव में इस सोच पर अटके रहते हैं कि गुमशुदा जानबूझकर घर से गया या अनजाने में उसे ले जाया गया। ब्रिटेन में गुमशुदा व्यक्तियों पर हुए एक अध्ययन का यह निष्कर्ष था कि लगभग दो-तिहाई व्यस्क गुमशुदा जान बूझकर तथा बाकी अनजाने में घर से चले जाते हैं या उनका परिवार से संपर्क टूट जाता है। अध्ययन का यह भी निष्कर्ष था कि अनजाने में घर से चले जाने वाले व्यस्कों में से लगभग आधे डिमेंशिया या अन्य किसी मानसिक बीमारी से पीड़ित होते हैं।[11]

II

प्रस्तुत आलेख मध्यप्रदेश के ग्वालियर जिले के 37 पुलिस थानों में वर्ष 2007 से 2015 तक पंजीबद्ध समस्त गुमशुदा प्रकरणों (जिनमें दस्तयाब तथा अदम दस्तयाब दोनों प्रकार के प्रकरण सम्मिलित हैं) तथा उनके परिवारों में अभावबोध तथा उनकी आवश्यकताओं पर किए गए अनुभवाश्रित अध्ययन का एक भाग है। यह अध्ययन इस प्रत्यय पर आधारित है कि समस्या पीड़ित परिवार से बेहतर और कोई नहीं जानता। गुमशुदा व्यक्तियों को एक समस्या के रूप में वर्णित करना कठिन है, क्योंकि सामाजिक घटना के रूप में इस विषय के अनेक पक्ष तथा प्रत्येक प्रकरण से सम्बद्ध

अपने लोक सरोकार हो सकते हैं। अत: अध्ययन हेतु शोध प्रक्रिया के निर्धारण में पीड़ित परिवार को केन्द्र में रखकर उसके मुखिया, घटना के अनुसंधान में संलग्न पुलिसकर्मी-अधिकारी तथा गैर सरकारी संगठनों से जुड़े लोगों को सम्मिलित किया गया। इस अध्ययन में 'परिवार' तथा 'संबंधियों' को वृहद संदर्भ में उपयोग किया गया है। सांस्कृतिक परिवेश में 'परिवार' में परिवार के सदस्य एवं 'संबंधियों' में निकट मित्र एवं सगे-संबंधी शामिल हैं।

अध्ययन विषय को गहनता से समझने के लिए त्रिकोणमितीय अध्ययन विधियों (अर्ध संरचनात्मक साक्षात्कार, पूरे परिवार के साथ समूह के रूप में एक साथ बातचीत तथा अर्ध सहभागी अवलोकन) के साथ गणनात्मक-गुणात्मक अध्ययन संयोजन प्रस्तुत किया गया। खोये-पाये गुमशुदा और उनके परिवारों पर किए गए इस अध्ययन में गुणात्मक तथ्यों को हितधारकों से विस्तृत चर्चा के उपरांत विकसित किया गया तथा श्रमसाध्य साक्षात्कारों के माध्यम से एकत्रित किया गया। अध्ययन के लिए चयनित 141 परिवारों में से 34 ऐसे परिवार थे जिनके परिजनों का साक्षात्कार दिनांक तक कोई पता नहीं था, वे अदम दस्तयाब थे। इन परिवारों के व्यस्क सदस्यों से गहन साक्षात्कार किया गया, ये वे व्यक्ति थे जो 'गुमशुदा' के प्रकरण से जुड़े थे और जिन्हें प्रकरण के समस्त पहलुओं की जानकारी थी। प्रस्तुत आलेख में लाक्षणिक आधार पर चयनित ऐसे प्रकरणों को प्रस्तुत किया गया है जो समस्त परिवारों की आवश्यकताओं एवं चुनौतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

गुमशुदगी की घटनाएं प्रथम दृष्टया गुमशुदा व्यक्ति के इरादे का प्रश्न लगती हैं - क्या व्यक्ति अपनी इच्छा से लापता होना चाहता था? क्या माता-पिता, पति/पत्नी, भाई-बहन या बच्चों से सम्बंध विच्छेद जानबूझकर थे? तथापि यह प्रत्यय उन व्यक्तियों को शामिल नहीं करता जो बिना किसी इरादे के अनजाने में लापता हैं। हो सकता है कि उन्हें किसी व्यक्ति द्वारा जबरदस्ती गायब किया गया हो या उनके साथ कोई दुर्घटना घटी हो अथवा वे किसी मानसिक परिस्थिति के कारण कहीं चले गये हों। तब प्रश्न उठता है कि क्या व्यक्ति का गुम हो जाना एक चुनी हुई या आरोपित स्थिति है? कुछ गुमशुदा व्यक्ति किसी भी प्रकार से स्वयं को गुमशुदा नहीं समझते, वे इसे अन्य स्थान पर एक नया जीवन जीना मानते हैं। इस प्रकार ऐसा व्यक्ति उन लोगों की दृष्टि में ही 'गुमशुदा' माना जायेगा जो उसे ढूंढना चाहते हैं, न कि उसकी अपनी दृष्टि में।

गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों पर किए गये इस अध्ययन में घर से लापता होने को संबंध-विच्छेद के रूप में परिभाषित किया गया है, चाहे यह परिभाषा गुमशुदा

द्वारा की गई हो या किसी अन्य के द्वारा; चाहे व्यक्ति गुम हो जाना सुविचारित हो या बिना सोचे-समझे। अत: उक्त विश्लेषण गुम होने की ऐसी संकल्पना की ओर अग्रसर करता है जिससे सातत्य है - जिसमें सोच-समझकर सम्बंध तोड़कर जाने वालों से लेकर बिना कुछ सोचे, बिना अपनी इच्छा के चले जाने वाले सम्मिलित हैं।

III

इस आलेख में परिवार के किसी व्यक्ति के गुम हो जाने पर उस परिवार के अन्य सदस्यों पर पड़ने वाले प्रभावों, उनके अभावबोध[12], उनकी आवश्कयताओं तथा चुनौतियों की समीक्षा की गई है। गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों से जब यह पूछा गया कि "वे क्या चाहते हैं?" तब बहुत से परिवारों ने अपने अधिकारों की जानकारी होते हुए भी अधिकार की भाषा का प्रयोग नहीं किया। उन्हें मालूम था कि न्याय और क्षतिपूर्ति प्राप्त करना उनका अधिकार है तब भी उनके लिए अभावबोध चर्चा का विषय था न कि अधिकार का। गुमशुदा व्यक्तियों के ज्यादातर परिवार उन समस्याओं की अधिक बात कर रहे थे जिनका सामना वे प्रतिदिन कर रहे थे और उन आवश्यकताओं को बार-बार दोहरा रहे थे जिनसे ये समस्यायें उपज रहीं थीं। इस प्रकार उनके अभावबोध पर बातचीत की भाषा उनकी आवश्यकताएं बन गई थीं। यद्यपि ऐसे परिवारों की आवश्कताओं का सामान्यीकरण करना अत्यंत कठिन है क्योंकि ये स्थिर नहीं रहती और इनमें दिन-प्रतिदिन नई आवश्यकताएं जन्मती रहती हैं। ये न केवल ग्रामीण व नगरीय परिवेश के आधार पर, परिवार की दशाओं, शैक्षणिक तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर भिन्न होती हैं वरन् परिवारों के बीच में भी अलग-अलग होती हैं और ये भिन्नता परिवार के सदस्यों के परस्पर संबंधों पर निर्भर करती है। परिवारों की आवश्कयताओं में यह अंतर कई बार परिवार में गुमशुदा की प्रस्थिति के आधार पर भी होता है।

साक्षात्कार के समय उत्तरदाताओं से अपने स्वजनों के गुम होने के संबंध में परिवार की अपेक्षाओं तथा प्राथमिकताओं के बारे में पूछा गया। इस प्रश्न के उत्तर में परिवार के सदस्यों ने कभी ढेर सारे प्रति प्रश्न पूछे, कभी उनके पास कहने के लिए कुछ नहीं था; सिर्फ सूनी आंखें या कभी आंखों से बहती अश्रुधारा। स्वजनों के घर से लापता हो जाने के प्रश्न के उत्तर में तीन प्रकार की प्रतिक्रियायें मिलीं: गुमशुदा व्यक्ति की नियति के बारे में यह सत्य जानना कि 'वह जिंदा है अथवा नहीं।' यह जानने की तीव्र इच्छा कि लापता व्यक्ति कहां है, किस हाल में है? सर्वोच्च प्राथमिकता थी। परिवार की आर्थिक सहायता, बच्चों की पढ़ाई, इलाज तथा भरण-पोषण दूसरी प्राथमिकता थी; जबकि व्यक्ति को घर से जाने के लिए प्रेरित करने वालों को

दण्ड मिले, अंतिम प्राथमिकता थी। अधिकांश परिवार, हालांकि अपनी प्राथमिकताओं पर स्पष्ट थे पर वे यह अवश्य जानना चाहते थे कि उनके गुमशुदा स्वजन का क्या हुआ? साथ ही, कमाने वाले की अनुपस्थिति में आर्थिक सहयोग की अपेक्षा करते थे, जबकि बहुत ही कम परिवार मुख्य रूप से शहरी तथा शिक्षित, गुमशुदा के संबंध में न्याय को अपनी प्राथमिकता मानते थे। इस प्रकार, यह विश्लेषण विकल्पों के समुच्चय की अपेक्षा सापेक्षिक आवश्यकताओं के संस्तरण को दर्शाता है। विश्लेषण में यह स्पष्ट था कि गुमशुदा व्यक्ति के परिवारों के पुरुष सदस्य अधिकांशत: न्याय, दण्ड आदि जैसे राजनैतिक विषयों को महत्व दे रहे थे, वहीं महिलाओं के लिए गुमशुदा से जुड़े सामुदायिक तथा सामाजिक विषय अधिक महत्वपूर्ण थे।

IV
परिवारों की सामुदायिक एवं सामाजिक आवश्यकताएं

अधिकांश परिवारों की पहली प्राथमिकता अपने परिजन की विश्वसनीय जानकारी प्राप्त करना होती है चाहे उसकी पृष्ठभूमि तथा अवस्थिति कुछ भी हो लेकिन ऐसे परिवार प्राय: अपने परिजन के गुम होने की पुष्टि अन्य व्यक्तियों से चाहते हैं ताकि उन्हें किसी प्रकार का संदेह न रहे। अधिकतर परिवार पहले अपने स्तर पर स्वजन को ढूंढने का प्रयास करते हैं और जब उन्हें कोई खबर नहीं मिलती तब पुलिस को सूचना देते हैं और फिर वह व्यक्ति 'गुमशुदा' बन जाता है।

गुमशुदा की नियति के बारे में ज्यादातर परिवार के सदस्यों में मतभिन्नता रहती है। अक्सर परिवार के पुरुष सदस्य व्यक्ति के लम्बे समय तक न आने पर मृत्यु का संदेह करने लगते हैं जबकि महिलायें ऐसा नहीं सोचतीं। गुम होने की परिस्थितियों के बारे में स्पष्ट जानकारी का अभाव अफवाहों को फैलने का आधार बन जाता है। ये अफवाहें सामान्त: गुमशुदा कहां हैं, किस हाल में है और वह क्यों गया है; इस बारे में होती हैं और गुमशुदा परिवारों को विचलित करती हैं। जब अफवाह गुमशुदा कहां है, इस बारे में होती है तब वह परिवार के प्रयासों को भ्रमित करती है। इस अफवाह के कारण कई बार परिवार के सदस्यों को तलाश करने वाले स्थान से विपरीत दिशा में तलाश करने जाना पड़ता है, जिससे समय और धन का अपव्यय होता है। जब अफवाह गुमशुदा के जिंदा रहने या मरने के बारे में होती है तब वह परिवार को विचलित कर देती है। इस अफवाह पर भरोसा करने के लिए तथ्य जुटाने के प्रयास परिवार प्रारंभिक तौर पर नहीं करते, बल्कि अफवाह फैलाने वाले या इस तरह की जानकारी देने वाले से ही गुमशुदा के संसार में न होने का सुबूत चाहते हैं;

इस अफवाह पर वे विश्वास तब ही करते हैं जब उन्हें इस सम्बंध में पुख्ता प्रमाण मिल जाते हैं। जब अफवाह गुमशुदा के घर से जाने के बारे में होती है, तब वह सीधे गुमशुदा के चरित्र या व्यवहार को प्रतिबिंवित करती है और इससे परिवार प्रभावित होता है।

उनके बारे में पुलिस और कुछ लोगों ने बताया था कि उनकी दोस्ती किसी अन्य महिला से थी, शायद इसलिए वह चले गये। उन्होंने इस बारे में भी कभी चर्चा नहीं छेड़ी, न ही कभी उनके कार्य-व्यवहार से ऐसा लगा कि वे ऐसे होंगे। इस बात पर भरोसा नहीं कर पा रही हूँ, लेकिन इस बात से परेशान बहुत हूँ।

(एक गुमुशदा की पत्नी, झांसी रोड, ग्वालियर)

अधिकांश परिवारों में अपने परिजन को पुन: देखने की तीव्र और वास्तवितक इच्छा थी। वे अपने परिजन के लापता होने के कुहासे को जल्दी से जल्दी छंटता हुआ देखना चाहते थे कि उनके परिजन कभी वापस नहीं लौटेंगे। जिन परिवारों से गुमुशदा बिना कोई संकेत दिए घर छोड़कर चले गये थे, वे परिवार गुमशुदा के मिलने के साथ यह जानने को भी आतुर थे कि उसके जाने की वजह क्या थी ? ऐसे परिवारों में बच्चे, गुमशुदा के जाने के बाद परिवार में बने माहौल को लेकर हतप्रभ होते हैं तो कभी गुमशुदा को याद करके भावुक हो जाते हैं। समय के साथ हतप्रभ तथा आश्चर्यचकित होने की स्थिति धीरे-धीरे कम होने लगती है। बच्चे का भावुक होना गुमशुदा से उसके लगाव पर निर्भर करता है और यह लगाव बच्चे की जरूरतों से पैदा होता है। बच्चा गुमशुदा को उसी समय ज्यादा याद करता है जो उसके और गुमशुदा के बीच एक साथ रहने, खेलने या क्वालिटी टाइम बिताने का होता है।

बेटा 5 साल का था, जब नितिन बिना कुछ बताए काम से घर नहीं लौटे थे। नितिन और बेटे के बीच बहुत लगाव था। शाम को जब नितिन काम से लौटते थे तब वह उनके साथ खेलता था, बाजार जाता था। उनके जाने के बाद शुरू-शुरू में वह उसी समय पर उदास हो जाता था। अब धीरे-धीरे नॉर्मल हो रहा है लेकिन शाम के समय अभी भी कभी-कभी भावुक हो जाता है और पूछने लगता है कि मम्मी, पापा कब आएंगे ?

(एक गुमशुदा की पत्नी, चेतकपुरी, ग्वालियर)

ग्रामीण व नगरीय परिवारों के विचारों में सापेक्षिक आवश्यकताओं के संबंध में एक नाटकीय झुकाव होता है। नगरीय परिवारों की अपेक्षा ग्रामीण परिवारों के सदस्यों का झुकाव गुमशुदा को तलाश करने के प्रयासों के साथ-साथ 'सर्वशक्तिमान' में भी होता है। जब इनके पास गुमशुदा को तलाश करने के संसाधन समाप्त हो जाते हैं तब गुमशुदा के लौटने की सारी उम्मीदें 'ऊपर वाले' में निहित हो जाती हैं।

हमने अपने भाई विजयराम को 4-5 साल हर जगह ढूंढ़ा लेकिन वो नहीं मिला, इसके लिए घर में जो रुपया-पैसा था वह भी खर्च हो गया। जब कुछ नहीं बचा तो सब भगवान भरोसे छोड़ दिया। हाँ, अब अगर कोई खबर मिलती है कि उसे फलां जगह देखा गया है तो वहां चले जरूर जाते हैं।

(एक गुमशुदा का भाई, ग्राम-पनिहार, ग्वालियर)

साक्षात्कार के समय यह ज्ञात हुआ कि अधिकांश परिवार चाहे वे किसी भी धर्म को मानने वाले हों, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति कुछ भी हो, वे कितने भी पढ़े-लिखे हों अपने परिजन की तलाश में ऐसी सभी जगह जाते हैं जहाँ उनके प्रियजन की कोई खबर या वापसी की कोई उम्मीद हो। कई बार यह जानते हुए भी कि उनके द्वारा दी गई सूचना झूठी होती है, वे बिना पुष्टि के केवल आस में तांत्रिकों, साधुओं, फकीरों से मिलते हैं। तो कभी वे गुमशुदा की विश्वसनीय जानकारी के लिए ज्योतिषियों के पास इसलिए जाते हैं कि वे उनके प्रश्नों का तुरंत उत्तर दे सकते हैं। चूंकि भारतीय समाज में ज्योतिष को धर्म के साथ जोड़कर देखा जाता है अत: सामान्य व्यक्ति के लिए उसकी विश्वसनीयता को नकारना कठिन होता है।

मैंने अपने बच्चे की तलाश में अब तक 8 लाख रुपयों से ज्यादा खर्च कर दिया है। जिसने जहां बताया वहां दौड़े-दौड़े गये, कभी खुद तो कभी किसी रिश्तेदार को पैसा देकर भेजते थे। इसमें सारी जमां-पूंजी खर्च हो गई। 1 लाख से ज्यादा रुपया तो कम से कम 50 साधु-बाबाओं, मुल्लाओं और ज्योतिषियों पर खर्च कर दिया। सभी ने अलग-अलग दिशाओं और स्थान पर जाने की सलाह दी लेकिन परिणाम सिफर मिला। इन लोगों से भरोसा उठ गया है किन्तु उम्मीद तो अब भी बाकी है कि शायद कोई सही सूचना दे दे। इसी भरोसे की वजह से इनकी बात भी मानना पड़ती है।

(एक गुमशुदा के पिता, टेकनपुर, ग्वालियर)

प्राय: गुमशुदा परिवार के सदस्य यह स्वीकार नहीं कर पाते कि उनके परिजन की मृत्यु हो चुकी है, इसलिए उनमें गुमशुदा की नियति का प्रमाण पत्र प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है। वे ऐसी सूचना चाहते हैं जिसमें किसी प्रकार का कोई संदेह न हो, भले ही सूचना परिजन की मृत्यु से ही क्यों न जुड़ी हो, क्योंकि गुमशुदा के बारे में यह अनिश्चितता कि उसके साथ कोई क्षति हुई भी है अथवा नहीं, परिवार के वर्तमान को प्रभावित करती है। परिवार के सदस्यों को यह भी पता नहीं होता कि उन्हें कभी इस अनंत कष्ट से मुक्ति मिलेगी भी या नहीं।

अध्ययनकर्ताओं ने पूरे परिवार के साथ समूह के रूप में एक साथ बातचीत में पूछा कि क्या किसी प्रियजन की मृत्यु से जन्मे वियोग और क्षति की तुलना गुमशुदा के जाने के वियोग से की जा सकती है ? क्या गुमशुदा के जाने से उपजा भावनात्मक दवाब गुजरते समय के साथ वैसे ही कम हो जाता है या समाप्त हो जाता है जैसे परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु के बाद हो जाता है ? परिवार के अधिकांश सदस्यों ने इन प्रश्नों को बेमानी माना और इस विचार को अस्वीकार कर दिया। कुछ प्रकरणों में तो इसकी स्वीकार्यता थी किन्तु गुमशुदा की स्थिति के संबंध में अनिश्चितता के कारण ऐसे प्रकरणों में शोक प्रक्रिया अनुपस्थित होती है और अंतत: कष्ट बरकरार रहता है। वहीं अधिकांश सदस्यों का कहना था कि समय बीतने के साथ घाव नहीं भरते बल्कि वो दर्द और बढ़ जाता है, वो वर्षों बाद भी उतना ही रहता है जितना कि पहले दिन था।

> *उस मनहूस रात को कभी नहीं भूल पाती। 20 अप्रैल 2010 को रात 8 बजे खाना खाकर मेरा छोटा बेटा पवन (25 वर्ष) दोस्त के घर पढ़ने की कहकर निकला था। जब सुबह घर नहीं लौटा तो उसके भाई और पिता ने तलाशना शुरू किया। 8 साल की इस तलाश में भाई की ठेकेदारी और पिता का स्वास्थ्य जाता रहा। रो-रोकर आंसू भी सूख गये लेकिन उसकी याद, उसके जाने का दु:ख जिंदा है और अब ये मरने के साथ ही जायेगा।*
>
> *(एक गुमुशदा की मां, कांतिनगर, ग्वालियर)*

जब परिवारों को यह ठोस आभास हो जाता है कि गुमशुदा मर चुका है; चाहे वे किसी भी धर्म के अनुयायी हों उन्हें उसकी पार्थिव देह या पूरे साक्ष्य चाहिए ताकि वे विश्वास कर सकें तथा आवश्यक धार्मिक संस्कार कर सकें। सामान्यत: परिवार, पुलिस द्वारा की गई लाश की पहचान पर विश्वास नहीं करते तथा बहुत से परिवारों को यह

मिथ्या विश्वास होता है कि वे लाश को कपड़ों तथा धारित वस्तुओं से पहचानने में योग्य हैं। वास्तवित रूप से अधिकांश परिवार मृत देह तथा मानव अवशेषों की पहचान की प्रक्रिया से अनभिज्ञ होते हैं क्योंकि उन्होंने कभी नहीं सोचा होता है कि वे कभी परिजन की लाश देखेंगे। इनके लिए एक दस्तावेज उनके परिजन की मृत्यु का पर्याप्त प्रमाण नहीं होता क्योंकि भारतीय संस्कृति में मृत्यु सदैव वह है जिसे परिवार द्वारा सीधे अनुभव किया जाता है; इसलिए मृत्यु के प्रमाण की यह आवश्यकता कानून प्रवर्तन एजेंसियों के प्रति अविश्वास के कारण और अधिक घनीभूत हो जाती है।

साड़ी के शोरूम में नौकरी करने वाले राजेन्द्र गुप्ता का बड़ा बेटा अभय (20 वर्ष) कॉलेज की पढ़ाई के साथ एक निजी बैंक में पार्ट टाइम नौकरी करता था। 6 अप्रैल 2015 को प्रतिदिन की तरह वह नौकरी पर गया लेकिन लौटा नहीं। राजेन्द्र कह रहे थे कि सब जगह फोन से पता लगाने के बाद वह पुलिस थाने जा रहे थे और बेटे को कॉल भी कर रहे थे। एक बार कॉल लग भी गया तो फोन रिसीव करने वाले ने अभय के अपहरण की बात बताई और 20 लाख रुपए का इंतजाम करने के लिए कहा। बड़ी मुश्किल से पुलिस ने अपहरण के मामले को सामान्य गुमशुदगी में पंजीबद्ध किया और फिरौती के फोन को बेटे की नाटकबाजी बताती रही। 14 जुलाई को अखबार में छपी खबर से उन्हें पता चला कि उनके बेटे की हत्या कर दी गई है और उसका कंकाल बरामद हो गया है। राजेंद्र कह रहे थे कि अगर मेरी बात को गंभीरता से लिया जाता तो भले ही उनका बेटा जिंदा नहीं मिलता लेकिन उसकी पार्थिव देह तो सही अवस्था में मिलती। अब तो कंकाल पर पड़े कपड़ों से ही उसकी पहचान कर पाये हैं।

(एक गुमशुदा का पिता, कम्पू, ग्वालियर)

V

परिवारों की वित्तीय आवश्यकताएं

अध्ययन में सम्मिलित 141 परिवारों में से 102 परिवारों की आर्थिक स्थिति निम्न या निम्न-मध्यम स्तरीय थी तथा उनके पास जीवन यापन के संसाधन भी अपर्याप्त थे। इन परिवारों के लिए ' वित्तीय आवश्यकताएं ' द्वितीय वरीयता थीं। अधिकांश परिवारों पर गुमशुदा को ढूंढ़ने के भावनात्मक तथा अन्य व्यावहारिक दवाबों

के कारण उनके सदस्यों की नौकरी-धंधों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, यहां तक कि उनकी जमा-पूंजी चुक जाती है और वे कर्ज में डूब जाते हैं। कुछ परिवारों ने गुमशुदा व्यक्ति का कर्ज लौटाने के लिए कर्ज लिया था ताकि उसकी और परिवार की बदनामी न हो और जब वह लौटे तो उस पर कोई वित्तीय दवाब न रहे, भले ही वह किसी वित्तीय दवाब में ही क्यों न लापता हुआ हो।

संजय ने अपने परिवार का साथ ठीक अपनी शादी की सालगिरह के दिन छोड़ा। 2 फरवरी 2014 को पूनम अच्छा खाना बनाकर अपने पति का इंतजार कर रही थी। पूनम कहती हैं कि संजय रात 11 बजे तक घर नहीं आए और जब आए तो शराब के नशे में अपने माता-पिता से झगड़ा कर कहीं चले गए। उनके दोस्त राजू और मनीष राठौर ने बताया कि संजय पर कर्ज था और वह उस रात भी पैसे मांगने आया था, फिर कहां गया नहीं मालूम। पूनम को लगता है कि ज्यादा पैसा कमाने की लालसा में दिल्ली न चले गये हों। हम उन्हें दिल्ली नहीं ढूंढ सकते। पुलिस से दिल्ली पुलिस की सहायता लेने के लिए बार-बार कहने पर पुलिस कहती है कि अपनी मर्जी से गया है, बच्चा नहीं है। जब उसका मन होगा लौट आएगा। तीन साल से वृद्ध सास-ससुर और दो बेटों को पालने में बहुत तकलीफ हो रही है, ऊपर से कर्जदारों का कर्ज चुकाने में घर की जमा-पूंजी भी नहीं बची। अब पता नहीं किस्मत क्या करवाने वाली है ?

(एक गुमशुदा की पत्नी, माधौगंज, ग्वालियर)

कमाने वाले व्यक्ति का परिवार को छोड़कर चला जाना आवश्यक रूप से परिवार की आर्थिक सुरक्षा को कम करता है, परिणामत: ऐसे परिवार जो संभल कर चल रहे थे, संघर्ष करने लगते हैं और जो संघर्ष कर रहे होते हैं वे गंभीर दरिद्रता से घिर जाते हैं। अध्ययन में कुछ परिवार ऐसे थे जिनमें परिवार का दायित्व संभालने वाले के लापता होने के बाद पीछे केवल वृद्ध, महिलाएं या बच्चे रह गये थे ; कोई ऐसा नहीं था जो उनकी सहायता करे, उन्हें आश्रय दे। ऐसे प्रकरणों में परिवार या तो अपने रिश्तेदारों पर आश्रित हो जाते हैं या भीख मांगने को मजबूर होते हैं या जीवन यापन

के लिए कोई अनैतिक साधन अपना लेते हैं। वहीं, कई गुमशुदा व्यक्तियों की पत्नियां अपने ही घरों में सास-श्वसुर की निंदा झेल रही थीं, जिसके फलस्वरूप वे या तो अपने ससुराल छोड़ चुकी थीं या बदतर स्थिति में रहने के लिए मजबूर थीं। इन परिवारों में ऐसी स्त्रियों के साथ विधवाओं जैसा व्यवहार किया जा रहा था।

> *आगरा-मुंबई हाईवे से सटे बरई गांव में रहने वाला 30 वर्ष का रामअवतार एक दिन अपना घर छोड़ गया। घर वाले उसके घर छोड़ने के पीछे उसका अपनी पत्नी से आए दिन होने वाले विवाद को मानते हैं। 29 जून 2010 की सुबह वह काम पर जाने की कहकर निकला फिर लौटा नहीं। घरवाले कहते हैं कि पत्नी जूली हमारे बेटे को अलग करना चाहती थी। रामअवतार के जाने के बाद भी उसके ऊपर कोई असर नहीं हुआ और अपने मायके रहने चली गई। जबकि, रामअवतार के पड़ोसियों का कहना था कि रामअवतार तो अपनी बीबी और बच्चे से बहुत प्यार करता था लेकिन जूली के सास-ससुर उसे चैन से नहीं रहने देते थे और रामअवतार के जाने के बाद तो उससे बहुत बुरा व्यवहार करने लगे थे, इसलिए वो बच्चे के साथ अपने पीहर चली गई।*

VI

परिवारों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं

यद्यपि प्रस्तुत अध्ययन द्वारा किसी व्यक्ति के लापता होने से परिवार के सदस्यों में उत्पन्न कुछ मनोवैज्ञानिक बाधाओं को पहचाना जा सकता था, किन्तु न तो अध्ययन का पद्धतिशास्त्र और न ही अध्ययनकर्ता उस असामान्य व्यवहार के लिए विश्लेषण की विशेषज्ञता रखते थे। अत: अध्ययन में परिवार पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभावों का एक सामान्य विश्लेषण कर मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं संबंधी निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया है।

गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों की भावनाओं की कोई भी सीमा हो सकती है जैसे उदासी, चिंता, अपराधबोध, गुस्सा तथा उम्मीद। वे उम्मीद की अधिकतम सीमा से लेकर उदासी की निम्नतम सीमा तक अनुभव कर सकते हैं। अध्ययन में सम्मिलित अदम दस्तयाब गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों ने बताया कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है गुमशुदा के वापस आने की उम्मीद की डोर कमजोर पड़ने लगती है लेकिन

टूटती नहीं है। गुमशुदा के प्रति लगाव तथा परिवार की जरूरतें परिवार के सदस्यों के मनोविज्ञान पर प्रभाव डालती हैं और उनके जीवन के प्रत्येक पक्ष-जीवनशैली, व्यवसाय, शिक्षा तथा संपर्क आदि को प्रभावित करती हैं । जीवन के ये पक्ष एक-दूसरे को भी प्रभावित करते हैं तथा परिवार इन्हें कभी एक ही समय कभी अलग-अलग अनुभव करते हैं। अनौपचारिक चर्चा के दौरान यह ज्ञात हुआ कि जिन परिवारों में गुमशुदा अपने पीछे सम्पत्ति छोड़कर गए थे तथा उससे परिवार की जरूरतें पूरी हो रही थीं, उन परिवारों द्वारा गुमशुदा को तलाशने के प्रयास वैसे नहीं किए जा रहे थे जैसे अपेक्षित थे और उस व्यक्ति के न होने का भाव भी उनके मन से हटने लगा था। इसके विपरीत अधिकांश ऐसे परिवार थे जहां गुमशुदा से भावनात्मक लगाव परिवार की जरूरतों पर भारी था तथा उदासी उनका स्थिर आधारभूत मनोभाव बन गई थी। परिवार के सदस्यों का कहना था कि यह भाव किसी भी समय जैसे गुमशुदा के पसंद का खाना बनने पर, जन्मदिन पर या त्यौहारों पर बार-बार उभरता है।

अपराधबोध और गुस्सा को अध्ययन में उपयोगी संवेग नहीं माना गया है क्योंकि परिवारों में गुस्सा एक मनोदशा के रूप में तो बातचीत में दिखा परन्तु उसकी अवधि बहुत ही कम थी तथा वह मनोदशा गुमशुदा की चिंता संबंधी औचित्य के लिए थी। चूंकि अधिकांश प्रकरणों में गुमशुदा ने घर छोड़ने के कारणों के संकेत नहीं छोड़े थे इसलिए अपराधबोध जैसा संवेग अनुपस्थित लगा। हां, परिवार के सदस्यों में अत्यधिक चिंता एक स्वाभाविक भावनात्मक अस्थिरता थी जिसके लक्षण परिवार के सदस्यों में अनिद्रा, रक्तचाप बढ़ना आदि के रूप में परिलक्षित हो रहे थे। चिंता का कारण गुमशुदा के बारे में लगातार सोचते रहना तथा किसी खबर का इंतजार था; विशेषत: बुरी खबर जो कभी भी आ सकती थी। शत-प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने परिजन के लापता हो जाने के बाद गंभीर अस्वस्थता की चर्चा की जो संभवत: लगातार चिंता व तनाव का परिणाम थी।

> *तुम सो ही नहीं सकते .....हर चार पहिया की गाड़ी- जीप या कार जो भी घर की तरफ आती दिखती है तो बस यही लगता है कि पुलिस आ रही है- अभी आकर दरवाजा खटखटाएगी और कोई बुरी खबर देगी। और जब मैं डॉक्टर को दिखाने जाती हूं तो वे कहते हैं कि मैं चिंता रोग से पीड़ित हूं। वे मुझे नींद की दवाई दे देते हैं।*
>
> *(एक गुमशुदा की पत्नी, मुरार, ग्वालियर)*

कई बार कोई खबर न मिलना, अच्छी खबर हो सकती है, क्योंकि खबर मिलने में बुरी खबर मिलने का संशय समय गुजरने के साथ बढ़ता जाता है। उम्मीद प्राय: सकारात्मक दृष्टिकोण दर्शाती है। कुछ गुमशुदा व्यक्तियों के परिवार भी यह विश्वास कर रहे थे कि उनके परिजन एक दिन अवश्य लौटेंगे लेकिन अन्य परिवारों के लिए उम्मीद इस साक्ष्य से जुड़ी थी कि गुमशुदा किस स्थिति में है - वह जीवित है तो कहां है और यदि उसकी मृत्यु हो गई है तो उसके अवशेष कहां हैं ? साक्षात्कार के समय उत्तरदाताओं ने बताया कि कानून प्रवर्तन एजेंसियों से उन्हें कोई उम्मीद नहीं थी। उनका कहना था कि उन्हें संशय था कि पुलिस उनके परिजन को ढूंढने के लिए वह करेगी जो उसे करना चाहिए।

> *बेटे की तलाश में थाने से लेकर अफसरों के घरों तक के चक्कर लगाए। फिरौती का फोन आने के बाद भी पुलिस अफसर कहते थे कि तेरा बेटा खुद गया है और अब खुद ही फोन करवा रहा है। मैंने जिन पर शक था उनके नाम भी बताए लेकिन पुलिस नाटक समझती रही अपहरणकर्ता खुले घूमते रहे। अब बेटे का कंकाल मिला है। ऐसे में कोई पुलिस से क्या उम्मीद करेगा।*
>
> *(एक गुमशुदा का पिता, निंबालकर की गोठ, ग्वालियर)*

प्राय: गुमशुदा व्यक्तियों के परिवार उन कानूनों से अनभिज्ञ होते हैं जो उनके अधिकारों और सुविधाओं के लिए बने हैं और न ही उन्हें उन सहूलियतों को प्राप्त करने की प्रक्रियाएं पता होतीं। गुमशुदा के परिवारों के व्यावहारिक मुद्दों के निराकरण के लिए भी कोई वैधानिक ढाँचा नहीं है। आज भी अनेकों परिवार गुमशुदा की अनिश्चित व अलिखित नियति के परिणामस्वरूप प्रशासनिक अड़चनों का सामना करते हैं, चाहे वो क्षतिपूर्ति का मामला हो या जमीन-जायदाद के मालिकाना हक के लिए आवश्यक कागजातों का। अत: यह कहा जा सकता है कि गुमशुदा व्यक्ति के परिवारों की आवश्यकताएं सामुदायिक व सामाजिक अधिक होती हैं, उन्हें आर्थिक व मनोवैज्ञानिक स्तर पर सतत संघर्षरत रहना पड़ता है, वे न्याय की बात अपेक्षाकृत कम करते हैं तथा सरकारी अभिकरणों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई अपेक्षा नहीं रखते।

संदर्भ एवं टिप्पणियां

1. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड्स ब्यूरो, नई दिल्ली भी इस स्थिति में नहीं होता कि गुमशुदा व्यक्तियों संबंधी राष्ट्रीय आंकड़े प्रस्तुत कर सके। राज्य सरकारों द्वारा प्राप्त गुमशुदा व्यक्तियों की सूचनाएं ब्यूरो के प्रलेख केंद्र (डॉक्यूमेंटेशन सेंटर) तक अथवा अधिकतम ट्रांसफर डेस्क तक ही भेजी जाती हैं, क्योंकि एनसीआरबी ऐसे प्रकरणों की जांच या निगरानी करने वाला संगठन नहीं है। पहले राज्यों की पुलिस गुमशुदा व्यक्तियों को ढूंढ़ निकालने या स्वत: लौटने वालों की कोई जानकारी एनसीआरबी नहीं देती थी किंतु अब ब्यूरो ने 'तलाश' सूचना व्यवस्था के अंर्तगत ऐसे आंकड़े एकत्रित करना आरंभ कर दिए हैं।

2. शंकर सेन और पी.एम. नायर (2005) ट्रेफिकिंग इन वुमन एण्ड चिल्ड्रन इन इंडिया, नई दिल्ली: ऑरिएण्ट लौंगमैन.

3. चाइल्डलाइन इंडिया फांउडेशन (2007) *"मिसिंग चिल्ड्रन ऑफ इंडिया : इश्यू.ज एण्ड अप्रोचेज-ए चाइल्डलाइन पर्सपेक्टिव",* मुंबई : सीआईएफ.

4. बचपन बचाओ आंदोलन भारत में एक आंदोलन है जो बच्चों के हित और अधिकारों के लिए कार्य करता है।

5. बचपन बचाओ आंदोलन (2012) "मिसिंग चिल्ड्रन ऑफ इंडिया: ए सिनॉप्सिस", न्यू देहली: बीबीए.

6. जे.डी.हिर्शेल और एस.पी. लैब (1988) 'हू इ.ज मिसिंग ? द रियलिटी.ज ऑफ द मिसिंग पर्सन्स प्रॉब्लम', *जर्नल ऑफ क्रिमिनल जस्टिस,* वॉल्यूम 16, पेज35-45.

7. एम. हेन्डर्सन, पी. हेन्डर्सन और सी. कियरनन, (2000) *मिसिंग पर्सन्स: इन्सीडेंसस, इश्यू.ज एण्ड इम्पैक्ट्स,* ट्रैन्डस एण्ड इश्यू..ज इन क्राइम एण्ड क्रिमिनल जस्टिस नं. 144, कॅनबरा: आस्ट्रेलियन इंस्टीट्यूट ऑफ क्रिमिनोलॉजी, पेज1-6.

8. एम. हेन्डर्सन, पी. हेन्डर्सन और सी. कियरनन, (2000):5

9. पी.जी. बॉस (2002) 'ऐम्बीगुअस लॉस : वर्किंग विथ फैमिलीज ऑफ द मिसिंग', *फैमिली प्रोसेस,* वॉल्यूम 41, पेज 14-17.

10. पी.जी.बॉस, (2007) 'ऐम्बीगुअस लॉस थ्योरी : चेलेन्जे.ज फॉर स्कालर्स एण्ड प्रेक्टिसनर्स', *फैमिली रिलेशंस,* वॉल्यूम 56, पेज-105-111.

11. ए.बीहल, एफ. मिशैल और जे. वेड, (2003) लॉस्ट फ्रॉम व्यू : मिसिंग पर्सन्स इन द यूके, ब्रिस्टॉल : द पॉलिसी प्रेस.

12. अभावबोध से तात्पर्य इस बात से लगाया गया है कि परिवार के सदस्य उन व्यक्तियों की तुलना में, जिनके साथ अपनी तुलना का औचित्य समझता है, अपने में कुछ अभाव का अनुभव करता है। यह अभाव उनमें न केवल उपलब्धि आवश्यकता कम करता है और दूसरों पर निर्भर रहने की आवश्यकता में वृद्धि करता है, बल्कि इससे उनका आत्म-प्रत्यय प्रतिकूल तथा आत्मसम्मान कम हो जाता है एवं उनमें भाग्यवादिता, निराशा, लाचारी आत्मदया तथा भाव शून्यता आदि समस्याएं बढ़ जाती हैं।